Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN: 2581-6241 Volume - 3, Issue - 2, Mar-Apr – 2020
Bi-Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 3.589
Received on : 03/03/2020 Accepted on : 15/03/2020 Publication Date: 31/03/2020

“हिन्दू नीतिशास्त्र में अन्तर्निहित धर्माधर्म की संकल्पना”

डॉ घनश्याम भट्ट
प्रवक्ता-संस्कृत, राजकीय इण्टर कॉलेज बेड़गाँव,, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड,भारत
Email- gsbhatt_india@hotmail.com

शोधसार:- भारतीय सभ्यता की पहचान आध्यात्मिकता व नैतिकता जैसे मूल्यों के कारण ही विश्व में अद्वितीय है। नैतिकता मानवीय संबन्धों व व्यवहारों की आधारभूत आवश्यकता है। नैतिकता के अभाव में मानव दो पांव वाले पशु से भिन्न कुछ भी नही है। नैतिक मूल्यों के महत्व को समझते हुवे उसे हमारे तत्ववेत्ताओं ने परम्परा, आचार, व्यवहार, कर्तव्य आदि के रूप में स्थापित कर व्यावहारिक रूप दिया। नैतिकता अथवा नैतिक मूल्यों का तात्पर्य भारतीय सभ्यता में धर्म, सत्य, सदाचार, शुभ, उचित, ईश्वर, आत्मा, आदि सम्प्रत्ययों से है | धर्म नैतिकता का केन्द्रीयभूत तत्व है जिसके आसपास आने से ही अन्य सम्प्रत्यय जीवन्तता को प्राप्त करते है।

शोध-विवरण :-

प्राचीन काल में ही जब विश्व मानव समुदाय, जीवन के लिये संघर्षरत था तथा यायावरीय जीवन व्यतीत कर रहा था, तब ही भारतीय सभ्यता उच्च मानवीय मूल्यों का सृजन कर नैतिक जीवन व्यतीत करने लगी थी। भारतीय सभ्यता ज्ञानालोक से आलोकित हो कर उच्च आध्यात्मिक मूल्यों का प्रसार विश्व में करने हेतु प्रयास रत थी। भारतीय सभ्यता की पहचान आध्यात्मिकता व नैतिकता जैसे मूल्यों के कारण ही विश्व में अद्वितीय है। नैतिकता मानवीय संबन्धों व व्यवहारों की आधारभूत आवश्यकता है। नैतिकता के अभाव में मानव दो पांव वाले पशु से भिन्न कुछ भी नही है। नैतिक मूल्यों के महत्व को समझते हुवे उसे हमारे तत्ववेत्ताओं ने परम्परा, आचार, व्यवहार, कर्तव्य आदि के रूप में स्थापित कर व्यावहारिक रूप दिया। नैतिकता अथवा नैतिक मूल्यों का तात्पर्य भारतीय सभ्यता में धर्म, सत्य, सदाचार, शुभ, उचित, ईश्वर, आत्मा, आदि सम्प्रत्ययों से है | धर्म नैतिकता का केन्द्रीयभूत तत्व है जिसके आसपास आने से ही अन्य सम्प्रत्यय जीवन्तता को प्राप्त करते है।

हिन्दू नीतिशास्त्र में धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। कभी साधारण धर्म , कभी वर्णाश्रम धर्म तथा कभी पुरूषार्थ के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। सामान्यतया ‘धर्म’ शब्द उन नियमों या सिद्धान्तों को इंगित करता है, जिसके द्वारा समाज नियमित और व्यवस्थित रहता है जिसके पालन से समाज में सुख व कल्याण की स्थापना होती है। इसे मनु ने इस प्रकार कहा है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।1
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

धर्म शब्द को अंग्रेजी भाषा के “Duty” के समान माना गया है। धर्म की अवधारणा प्राचीन काल से ही है जब से मानवीय सभ्यता का विकास प्रारम्भ हुआ।

'धर्म' शब्द संस्कृत के 'धृ ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना अर्थात जिसको धारण किया जाय वही धर्म है। धर्म शब्द का व्यवहार उन नैतिक नियमों के लिये किया गया है जो शिष्ट जनों द्वारा समाज-धारण के लिये आध्यत्मिक दृष्टिकोण से बनाये गये हैं, अत: जिससे धारण होता है, वही धर्म है। धर्म का

प्रयोग प्रकृति , शील , नियम , न्याय , कर्तव्य , कर्म , सद्गुण इत्यादि अर्थों में भी किया गया है। जो सबको समानरूप से अभ्युदय की ओर ले जाए तथा कल्याण के मार्ग का अनुसरण कराये , उसे ही धर्म कहते हैं-

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"2

हिंदू नीति शास्त्र में धर्म शब्द का प्रयोग आचरण के सन्दर्भ में किया गया है। अतः वैसा आचरण जो वेद, श्रुति इत्यादि शास्त्रों के अनुकूल होता है, उसे ही धर्म कहते हैं। शास्त्रो द्वारा निषिद्ध आचरण को अधर्म कहते है –

"आचारः परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च"3

मनु के अनुसार सम्पूर्ण वेद धर्म के मूल है। वेदज्ञों की स्मृतिया और शील धर्म का मूल है। साधुओं का आचार, उनके चित्त की सन्तुष्टि ही धर्म का मूल है

"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।4
आचारश्चैव साधुनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च ।।"

ऋग्वेद, यजुर्वेद , सामवेद , अथर्ववेद चारो ही वेदों को धर्ममूलक कहा गया है। वेदों की विधि तथा अर्थवाद मंत्रों में धर्ममूलकता का विधान किया गया है। अर्थवाद में स्तुति की प्रधानता होती है , किन्तु विधि का ही अंग होने के कारण उसकी भी प्रामाणिकता है

"विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधिनां स्युः मन्त्रार्थवादानामपि विधि वाक्यैक वाक्यतयैव धर्मे प्रामाण्यम् "5

शास्त्रों के अनुकूल कर्म को धर्म तथा उसके प्रतिकूत कर्मों को अधर्म कहते हैं। शास्त्रों से हम लोगों का तात्पर्य स्मृति , श्रुति इत्यादि से है। जिन कर्तव्यों को शास्त्रों में निषेध कहा गया है , वे अधर्म की श्रेणी में आते हैं। मनु ने कहा है-

"श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।6
एतच्चतुर्विधं, प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥"

मनुष्य का रहन - सहन, आचार - विचार, तथा आहार-व्यवहार की मर्यादा को बतलाने वाला धर्म है। अतः धर्म एक मर्यादा है , धर्म ही कल्याण है तथा धर्म आत्मा की वस्तु है। धर्म अथवा सदाचार के पालन से जो सन्तोष , सुख तथा आनन्द की अनुभूति होती है उसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है। इसलिये सत्य श्रद्धा , सत्य आचरण व सत्य ज्ञान को ही धर्म कहते है। इन तत्वों की उत्पति शुद्ध मनोवृति से होती है और शुद्ध मनोवृत्ति का जन्म विशुद्ध - आत्मा से होता है। आत्मानुभूति के अभाव में धर्म का होना सम्भव नहीं है। धर्म को अलौकिक कहा गया है अलौकिक वह है जो लौकिक नहीं है अर्थात जिसका ज्ञान सामान्य व्यक्तियों द्वारा न हो सके। दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति, तीनों कालो के ज्ञाता, अलौकिक वस्तुओं (ईश्वर, आत्मा, मोक्ष) के बारे में जो कुछ भी कहते है, वह सत्य है तथा वही धर्म है।

धर्म का अभिप्राय जीवन की ऐसी स्थिति से है, जो नैतिक और सात्विक आचरण से सम्बद्ध हो। वस्तुत: धर्म आचरण संहिता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्तित्व के रूप में नियन्त्रित होता हुआ क्रमशः विकसित होता है और अन्त में चरम उद्देश्य को प्राप्त करना है। हिन्दू नीतिशास्त्र में धर्म व्यक्ति के उन सभी गुणों परिस्थितियों और कार्यों को अभिव्यक्त करता है जिन सिद्धान्तों के अनुसार व्यक्ति अपना दैनिक जीवन व्यतीत करता है, वही धर्म है।

यह जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है –

"यः स्यादहिंसा संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।7
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।।"

इससे व्यक्ति के जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है। धर्म सभी नैतिक कार्यों का दर्पण या नियम है। धर्म कर्तव्यों का संग्रह है। गीता में धर्म का अर्थ चतुर्वर्ण धर्म से लिया गया है। कहा गया है-

Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN: 2581-6241 Volume - 3, Issue - 2, Mar-Apr – 2020
Bi-Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 3.589
Received on : 03/03/2020 Accepted on : 15/03/2020 Publication Date: 31/03/2020

"स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।"8

अपना धर्म अन्य व्यक्तियों के धर्म की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर होता है-

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठित्वात्।9
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥"

लेकिन चतुर्वर्ण धर्म एवं आश्रम धर्म के अतिरिक्त भी एक धर्म है जो मनुष्यता का धर्म है। मनुष्य होने के नाते मनुष्यों का धर्म है सभी जीवों पर दया करना, सभी को समान दृष्टि से देखना तथा बुराई नहीं करना।

महाभारत के अनुसार धर्म वही है जिससे किसी दूसरे को कष्ट नही पंहुचे। जो धर्म का अनुसरण केवल अपने लिये करता है , वह अन्धे के समान सूर्य की प्रभा से भी अछूता रहता है-

"यस्य धर्मो हि धर्मार्थे क्लेशमाङ्स पंडितः ।10
न स धर्मस्य वेदार्थ सूर्यस्यान्ध: प्रभामिव ।।"

मनुष्य के सत्कार्य तथा गुण-सम्पन्नता धर्म के प्रभाव से ही संभव है। मीमांसा दर्शन के अनुसार वैसे कर्मों का पालन आवश्यक होता है, जो धर्म के अनुकूल होते हैं। मीमांसा के अनुसार वैदिक कर्मकाण्ड ही धर्म है। वेद में निहित निर्देश का अनुष्ठान ही धर्म है। धर्म का अर्थ वेद विहित कर्तव्य है। मीमांसा के अनुसार अधर्म का अर्थ वेद के निषिद्ध कर्मो का त्याग है। इस मत के अनुसार निष्कामकर्म ही धर्म है। अलौकिक श्रेय-साधन ही धर्म है। जिस साधन से आनन्द की प्राप्ति हो तथा जो अदृश्य हो उसे ही धर्म कहा जाता है। धर्म तथा अधर्म का निर्धारण वेद से होता है। इसके अनुसार धर्म विषयगत है। धर्म का निवास कर्म में है , शास्त्रनिर्देशित कर्म ही धर्म है। धर्म श्रेयसिद्धि का साधन है। धर्म दो प्रकार के है - लौकिक तथा पारमार्थिक। पारमार्थिक कर्म (धर्म) दो प्रकार के होते है –

1) काम्य कर्म 2) नित्य - नैमित्तिक कर्म।

साख्य के अनुसार धर्म मन की एक वृत्ति है। इसके मतानुसार धर्म तथा अधर्म का सम्बन्ध पुरूष से नहीं है। सांख्य विकासवाद में कहा गया है मन प्रकृति की देन है,पुरूष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः धर्म तथा अधर्म का सम्बन्ध मन से है। धर्म तथा अधर्म किसी भी रूप में पुरुष को प्रभावित नहीं करता है।

न्याय - वैशेषिक का मत धर्म तथा अधर्म के सम्बन्ध में साख्य से भिन्न है। न्याय - वैशेषिक के अनुसार धर्म को आत्मा का एक विशेष गुण माना गया है। धर्म आत्मगत है , अतः धर्म एवं अधर्म का निर्णय अभिप्राय के अनुसार किया जाता है। इस अभिप्राय में साध्य तथा साधन दोनों निहित होते है। किसी कर्म को धर्म तथा अधर्म की श्रेणी मे रखने के पूर्व कर्ता के साध्य तथा साधन दोनों को ही देखा जाता है। अत : न्याय - वैशेषिक के अनुसार अभिप्राय अच्छा होने पर धर्म तथा अभिप्राय बूरा होने पर उसे अधर्म की श्रेणी में रखा जाता है।

रामानुज के अनुसार नैतिक क्षेत्र में ईश्वर को ही प्रधान माना गया है। धर्म अधर्म का भी निर्णय ईश्वर के स्वभाव के अनुसार ही किया जाता है। ज्ञान , बल , दया , क्षमा इत्यादि गुण ही मनुष्यों के धर्म है।

बौद्ध मत के अनुसार धर्म मन की गतिशील अवस्था नहीं हैं। यह मन की एक धारणा है। साधारणतया धर्म तथा अधर्म का अर्थ पुण्य तथा पाप से होता है। लेकिन जैनियों ने धर्म तथा अधर्म का प्रयोग विशेष अर्थ में किया है। जैन मत के अनुसार गति के लिये जिस सहायक वस्तु की आवश्यकता होती है , उसे धर्म कहा जाता है। अधर्म धर्म के विपरीत है। जो किसी वस्तु को स्थिर रखने में सहायक होता है उसे अधर्म कहते है। अधर्म द्रव्यों के विभाग एवं स्थिति में सहायक होता है। जैनियों के अनसार धर्म तथा अधर्म क्रमशः नित्य तथा निष्क्रिय है।

शंकर के अनुसार धर्म तथा अधर्म का ज्ञान श्रुति से होता है। सत्य , अहिंसा , उपकार दया इत्यादि धर्म है। असत्य , हिंसा , अपकार , स्वार्थ आदि अधर्म हैं। शंकर के अनुसार धर्म आत्मसिद्धि का साधन है। धर्म की सत्ता व्यावहारिक है।

हिन्दू नीतिशास्त्र में धर्म एवं अधर्म के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। किसी ने इसे आत्मगत और किसी ने वस्तुनिष्ठ कहा है , एक वर्ग के विचारकों के अनुसार धर्म एवं अधर्म का निर्णय सुख तथा दुःख के आधार पर होता है, जहां कि दूसरा वर्ग यह स्वीकार करता है कि ईश्वर धर्म एवं अधर्म का आधार है। धर्म तथा अधर्म का नियमन श्रुति तथा स्मृति से भी किया जाता है। अत: भिन्न मतों के आधार पर धर्म तथा अधर्म के सम्बंध में एक निश्चित तथा सर्वमान्य निष्कर्ष निकालना कठिन है। न्याय - वैशेषिक के अनुसार धर्म - अधर्म का निर्णय कर्ता के अभिप्राय से होता है।

व्यावहारिक रूप से धर्माधर्म के निर्णय के समय अन्य बातों के साथ - साथ बुद्धि एवं विवेक से भी काम लेना चाहिये क्योंकि बुद्धि के द्वारा ही धर्म - अधर्म की सच्ची पहचान होती है। धर्मों के विभिन्न वर्गीकरण के आधारपर कहा जा सकता है कि हिन्दू नीतिशास्त्र की मुख्य विशेषता साधारण धर्म को स्वीकार करना है, धर्म का यह वर्गीकरण मानवता के लिए सार्वभौम नीतिशास्त्र की आधारशिला है। यह हिन्दूनीतिशास्त्र की विरोधी विचारधाराओं का समन्वय कर एक संश्लेषित रूप प्रस्तुत करता है जिसका अन्य किसी नीतिशास्त्र में अभाव पाया जाता है।

संदर्भः

1 . मनुस्मृति 6 / 92
2 . अध्यात्मोपनिषद , 64
3. मनुस्मृति 1 . 108
4 . मनुस्मृति 26
5 . जैमिनी सूत्र
6 . मनुस्मृति , 2.12
7 . महाभारत , शान्तिपर्व 109 . 58
8 . गीता , 2 . 31
9 . गीता , 18 . 47
10 . महाभारत , वनपर्व 33 , 22 – 23